श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG-11.16 - तृतीय सोपान (अर्थ)

उद्धव उवाच

त्वं(म्) ब्रह्म परमं(म्) साक्षा - दनाद्यन्तमपावृतम् ।

सर्वेषामपि भावानां(न्), त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ 1॥

उच्चावचेषु भूतेषु, दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ।

उपासते त्वां(म्) भगवन्, याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ 2॥

उद्धवजी ने कहा—भगवन्! आप स्वयं परब्रह्म हैं, न आपका आदि है और न अन्त। आप आवरण-रहित, अद्वितीय तत्त्व हैं। समस्त प्राणियों और पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलय के कारण भी आप ही हैं। आप ऊँचे-नीचे सभी प्राणियों में स्थित हैं; परन्तु जिन लोगों ने अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, वे आपको नहीं जान सकते। आपकी यथोचित उपासना तो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही करते हैं ।

येषु येषु च भावेषु, भक्त्या त्वां(म्) परमर्षयः ।

उपासीनाः(फ्) प्रपद्यन्ते, सं(व्)सिद्धिं(न्) तद् वदस्व मे ॥ 3॥

बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि आपके जिन रूपों और विभूतियों की परम भक्ति के साथ उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, वह आप मुझसे कहिये।

गूढश्चरसि भूतात्मा,भूतानां(म्) भूतभावन ।

न त्वां(म्) पश्यन्ति भूतानि, पश्यन्तं(म्) मोहितानि ते ॥ 4॥

समस्त प्राणियों के जीवनदाता प्रभो! आप समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। आप उनमें अपने को गुप्त रखकर लीला करते रहते हैं। आप तो सबको देखते हैं, परन्तु जगत् के प्राणी आपकी माया से ऐसे मोहित हो रहे हैं कि वे आपको नहीं देख पाते ।

याः(ख्) काश्च भूमौ दिवि वै रसायां(म्),

विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।

ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते,

नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ 5॥

अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो! पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल तथा दिशा - विदिशाओं में आपके प्रभाव से युक्त जो-जो भी विभूतियाँ हैं, आप कृपा करके मुझसे उनका वर्णन कीजिये। प्रभो! मैं आपके उन चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो समस्त तीर्थों को भी तीर्थ बनानेवाले हैं ।

श्रीभगवानुवाच

एवमेतदहं(म्) पृष्टः(फ्), प्रश्नं(म्) प्रश्नविदां(म्) वर ।

युयुत्सुना विनशने , सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ 6॥

अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो! पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल तथा दिशा - विदिशाओं में आपके प्रभाव से युक्त जो-जो भी विभूतियाँ हैं, आप कृपा करके मुझसे उनका वर्णन कीजिये। प्रभो! मैं आपके उन चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो समस्त तीर्थों को भी तीर्थ बनानेवाले हैं ।

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं(ङ्) गर्ह्य- मधर्मं(म्) राज्यहेतुकम् ।

ततो निवृत्तो हन्ताहं(म्), हतोऽयमिति लौकिकः ॥ 7॥

अर्जुन के मन में ऐसी धारणा हुई कि कुटुम्बियों को मारना और वो भी राज्य के लिये, बहुत ही निन्दनीय अधर्म है। साधारण पुरुषों के समान वह यह सोच रहा था कि 'मैं मारनेवाला हूँ और ये सब मरनेवाले हैं। यह सोचकर वह युद्ध से उपरत हो गया' ।

स तदा पुरुषव्याघ्रो, युक्त्या मे प्रतिबोधितः ।

अभ्यभाषत मामेवं(म्),यथा त्वं(म्) रणमूर्धनि ॥ 8॥

तब मैंने रणभूमि में बहुत-सी युक्तियाँ देकर वीरशिरोमणि अर्जुन को समझाया था। उस समय अर्जुन ने भी मुझसे यही प्रश्न किया था, जो तुम कर रहे हो ।

अहमात्मोद्धवामीषां(म्),भूतानां(म्) सुहृदीश्वरः ।

अहं(म्) सर्वाणि भूतानि , तेषां(म्) स्थित्युद्भवाप्ययः।।9।।

उद्धवजी! मैं समस्त प्राणियों का आत्मा, हितैषी, सुहृद् और ईश्वर – नियामक हूँ। मैं ही इन समस्त प्राणियों और पदार्थों के रूप में हूँ और इनकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण भी हूँ ।

अहं(ङ्) गतिर्गतिमतां(ङ्),कालः(ख्) कलयतामहम् ।

गुणानां(ञ्) चाप्यहं(म्) साम्यं(ङ्),गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ 10॥

गतिशील पदार्थों में मैं गति हूँ। अपने अधीन करनेवालों में मैं काल हूँ। गुणों में मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ ।

गुणिनामप्यहं(म्) सूत्रं(म्),महतां(ञ्) च महानहम् ।

सूक्ष्माणामप्यहं(ञ्) जीवो, दुर्जयानामहं(म्) मनः ॥ 11॥

गुणयुक्त वस्तुओं में मैं क्रिया-शक्ति-प्रधान प्रथम कार्य सूत्रात्मा हूँ और महानों में ज्ञान-शक्तिप्रधान प्रथम कार्य महत्तत्त्व हूँ। सूक्ष्म वस्तुओं में मैं जीव हूँ और कठिनाई से वश में होनेवालों में मन हूँ ।

हिरण्यगर्भो वेदानां(म्),मन्त्राणां(म्) प्रणवस्त्रिवृत् ।

अक्षराणामकारोऽस्मि, पदानिच्छन्दसामहम् ॥ 12॥

मैं वेदों का अभिव्यक्तिस्थान हिरण्यगर्भ हूँ और मन्त्रों में तीन मात्राओं (अ+उ+म) वाला ओंकार हूँ। मैं अक्षरों में अकार, छन्दों में त्रिपदा गायत्री हूँ ।

इन्द्रोऽहं(म्) सर्वदेवानां(म्), वसूनामस्मि हव्यवाट् ।

आदित्यानामहं(म्) विष्णू, रुद्राणां(न्) नीललोहितः ॥ 13॥

समस्त देवताओं में इन्द्र, आठ वसुओं में अग्नि, द्वादश आदित्यों में विष्णु और एकादश रुद्रों में नीललोहित नाम का रुद्र ।

ब्रह्मर्षीणां(म्) भृगुरहं(म्), राजर्षीणामहं(म्) मनुः ।

देवर्षीणां(न्) नारदोऽहं(म्), हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ 14॥

मैं ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजर्षियों में मनु, देवर्षियों में नारद और गौओं में कामधेनु ।

सिद्धेश्वराणां(ङ्) कपिलः(स्), सुपर्णोऽहं(म्) पतत्त्रिणाम् ।

प्रजापतीनां(न्) दक्षोऽहं(म्), पितॄणामहमर्यमा ॥ 15॥

मैं सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष प्रजापति और पितरों में अर्यमा हूँ ।

मां(म्) विद्ध्युद्धव दैत्यानां(म्),प्रह्लादमसुरेश्वरम् ।

सोमं(न्) नक्षत्रौषधीनां(न्), धनेशं(म्) यक्षरक्षसाम् ॥ 16॥

प्रिय उद्धव! मैं दैत्यों में दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ओषधियों में सोमरस एवं यक्ष-राक्षसों में कुबेर हूँ — ऐसा समझो ।

ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(म्), यादसां(म्) वरुणं(म्) प्रभुम् ।

तपतां(न्) द्यमतां(म्) सूर्यं(म्), मनुष्याणां(ञ्) च भूपतिम् ॥ 17॥

मैं गजराजों में ऐरावत, जलनिवासियों में उनका प्रभु वरुण, तपने और चमकनेवालों में सूर्य तथा मनुष्यों में राजा ।

उच्चैः(श्)श्रवास्तुरं(ङ्)गाणां(न्), धातूनामस्मि कां(ञ्)चनम् ।

यमः(स्) सं(य्)यमतां(ञ्) चाहं(म्), सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ 18॥

मैं घोड़ों में उच्चैःश्रवा, धातुओं में सोना, दण्डधारियों में यम और सर्पों में वासुकि ।

नागेन्द्राणामनन्तोऽहं(म्),मृगेन्द्रः(श्) शृं(ङ्)गिदं(व्)ष्ट्रिणाम् ।

आश्रमाणामहं(न्) तुर्यो, वर्णानां(म्) प्रथमोऽनघ ॥ 19॥

निष्पाप उद्धवजी! मैं नागराजों में शेषनाग, सींग और दाढ़वाले प्राणियों में उनका राजा सिंह, आश्रमों में संन्यास और वर्णों में ब्राह्मण हूँ ।

तीर्थानां(म्) स्त्रोतसां(ङ्) गङ्गा, समुद्रः(स्) सरसामहम् ।

आयुधानां(न्) धनुरहं(न्),त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ 20॥

मैं तीर्थ और नदियों में गंगा, जलाशयों में समुद्र, अस्त्र-शस्त्रों में धनुष तथा धनुर्धरों में त्रिपुरारि शंकर हूँ ।

धिष्ण्यानामस्म्यहं(म्) मेरुर्- गहनानां(म्)हिमालयः ।

वनस्पतीनामश्वत्थ, ओषधीनामहं(म्) यवः ॥ 21॥

मैं निवासस्थानों में सुमेरु, दुर्गम स्थानों में हिमालय, वनस्पतियों में पीपल और धान्यों में जौ हूँ ।

पुरोधसां(म्) वसिष्ठोऽहं(म्), ब्रह्मिष्ठानां(म्) बृहस्पतिः ।

स्कन्दोऽहं(म्) सर्वसेनान्या- मग्रण्यां(म्) भगवानजः ॥ 22॥

मैं पुरोहितों में वसिष्ठ, वेदवेत्ताओं में बृहस्पति, समस्त सेनापतियों में स्वामिकार्तिक और सन्मार्गप्रवर्तकों में भगवान् ब्रह्मा हूँ ।

यज्ञानां(म्) ब्रह्मयज्ञोऽहं(म्), व्रतानामविहिंं(व्)सनम् ।

वाय्वग्र्यर्काम्बुवागात्मा, शुचीनामप्यहं(म्) शुचिः ॥ 23॥

पंच महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याययज्ञ) हूँ, व्रतों में अहिंसाव्रत और शुद्ध करनेवाले पदार्थों में नित्यशुद्ध वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी एवं आत्मा हूँ ।

योगानामात्मसं(व्)रोधो, मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ।

आन्वीक्षिकी कौशलानां(म्), विकल्पः(ख्) ख्यातिवादिनाम् ॥ 24॥

आठ प्रकार के योगों में मैं मनोनिरोधरूप समाधि हूँ। विजय के इच्छुकों में रहनेवाला मैं मन्त्र (नीति) बल हूँ, कौशलों में आत्मा और अनात्मा का विवेकरूप कौशल तथा ख्यातिवादियों में विकल्प हूँ ।

स्त्रीणां(न्) तु शतरूपाहं(म्),पुंं(व्)सां(म्) स्वायम्भुवो मनुः ।

नारायणो मुनीनां(ञ्) च, कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ 25॥

मैं स्त्रियों में मनुपत्नी शतरूपा, पुरुषों में स्वायम्भुव मनु, मुनीश्वरों में नारायण और ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ ।

धर्माणामस्मि सं(न्)न्यासः(ह्), क्षेमाणामबहिर्मतिः ।

गुह्यानां(म्) सूनृतं(म्) मौनं(म्), मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ 26॥

मैं धर्मों में कर्मसंन्यास अथवा एषणात्रय के त्यागद्वारा सम्पूर्ण प्राणियों को अभयदानरूप सच्चा संन्यास हूँ। अभय के साधनों में आत्मस्वरूप का अनुसन्धान हूँ, अभिप्राय-गोपन के साधनों में मधुर वचन एवं मौन हूँ और स्त्री-पुरुष के जोड़ों में मैं प्रजापति हूँ – जिनके शरीर के दो भागों से पुरुष और स्त्री का पहला जोड़ा पैदा हुआ ।

सं(व्)वत्सरोऽस्म्यनिमिषा- मृतूनां(म्) मधुमाधवौ ।

मासानां(म्) मार्गशीर्षोऽहं(न्), नक्षत्राणां(न्) तथाभिजित् ॥ 27॥

सदा सावधान रहकर जागनेवालों में संवत्सररूप काल मैं हूँ, ऋतुओं में वसन्त, महीनों में मार्गशीर्ष और नक्षत्रों में अभिजित् हूँ ।

अहं(म्) युगानां(ञ्) च कृतं(न्), धीराणां(न्) देवलोऽसितः ।

द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां(ङ्), कवीनां(ङ्) काव्य आत्मवान् ॥ 28॥

मैं युगों में सत्ययुग, विवेकियों में महर्षि देवल और असित, व्यासों में श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास तथा कवियों में मनस्वी शुक्राचार्य हूँ ।

वासुदेवो भगवतां(न्), त्वं(न्) तु भागवतेष्वहम् ।

किं(म्)पुरुषाणां(म्) हनुमान्, विद्याध्राणां(म्) सुदर्शनः ॥ 29॥

सृष्टि की उत्पत्ति और लय, प्राणियों के जन्म और मृत्यु तथा विद्या और अविद्या के जाननेवाले भगवानों में (विशिष्ट महा-पुरुषों में) मैं वासुदेव हूँ। मेरे प्रेमी भक्तों में तुम (उद्धव), किम्पुरुषों में हनुमान्, विद्याधरों में सुदर्शन (जिसने अजगर के रूप में नन्दबाबा को ग्रस लिया था और फिर भगवान् के पादस्पर्श से मुक्त हो गया था) मैं हूँ ।

रत्नानां(म्) पद्मरागोऽस्मि, पद्मकोशः(स्) सुपेशसाम् ।

कुशोऽस्मि दर्भजातीनां(ङ्), गव्यमाज्यं(म्) हविः(ष्)ष्वहम् ॥ 30॥

रत्नों में पद्मराग (लाल), सुन्दर वस्तुओं में कमल की कली, तृणों में कुश और हविष्यों में गाय का घी हूँ ।

व्यवसायिनामहं(म्) लक्ष्मीः(ख्), कितवानां(ञ्) छलग्रहः ।

तितिक्षास्मि तितिक्षूणां(म्), सत्त्वं(म्) सत्त्ववतामहम् ॥ 31॥

मै व्यापारियों में रहनेवाली लक्ष्मी, छल-कपट करनेवालों में ध्रुतक्रीडा़, तितिक्षुओं की तितिक्षा (कष्टसहिष्णुता) और सात्त्विक पुरुषों में रहनेवाला सत्त्वगुण हूँ ।

ओजः(स्) सहो बलवतां(ङ्),कर्माहं(म्) विद्धि सात्त्वताम् ।

सात्त्वतां(न्) नवमूर्तीना- मादिमूर्तिरहं(म्) परा ॥ 32॥

मैं बलवानों में उत्साह और पराक्रम तथा भगवद्भक्तों में भक्तियुक्त निष्काम कर्म हूँ। वैष्णवों की पूज्य वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह और ब्रह्मा- इन नौ मूर्तियों में मैं पहली एवं श्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ ।

विश्वावसुः(फ्) पूर्वचित्तिर्-गन्धर्वाप्सरसामहम् ।

भूधराणामहं(म्) स्थैर्यं(ङ्), गन्धमात्रमहं(म्) भुवः ॥ 33॥

मैं गन्धर्वों में विश्वावसु और अप्सराओं में ब्रह्माजी के दरबार की अप्सरा पूर्वचित्ति हूँ। पर्वतों में स्थिरता और पृथ्वी में शुद्ध अविकारी गन्ध मैं ही हूँ ।

अपां(म्) रसश्च परमस्- तेजिष्ठानां(म्) विभावसुः ।

प्रभा सूर्येन्दुताराणां(म्),शब्दोऽहं(न्) नभसः(फ्) परः ॥ 34॥

मैं जल में रस, तेजस्वियों में परम तेजस्वी अग्नि; सूर्य, चन्द्र और तारों में प्रभा तथा आकाश में उसका एकमात्र गुण शब्द हूँ ।

ब्रह्मण्यानां(म्) बलिरहं(म्), वीराणामहमर्जुनः ।

भूतानां(म्) स्थितिरुत्पत्ति- रहं(म्) वै प्रतिसङ्क्रमः ॥ 35॥

उद्धवजी! मैं ब्राह्मणभक्तों में बलि, वीरों में अर्जुन और प्राणियों में उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हूँ ।

गत्युक्त्युत्सर्गोपादान- मानन्दस्पर्शलक्षणम् ।

आस्वादश्रुत्यवघ्राण- महं(म्) सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ 36॥

मैं ही पैरों में चलने की शक्ति, वाणी में बोलने की शक्ति, पायु में मल-त्याग की शक्ति, हाथों में पकड़ने की शक्ति और जननेन्द्रिय में आनन्दोपभोग की शक्ति हूँ। त्वचा में स्पर्श की, नेत्रों में दर्शन की, रसना में स्वाद लेने की, कानों में श्रवण की और नासिका में सूँघने की शक्ति भी मैं ही हूँ। समस्त इन्द्रियों की इन्द्रिय-शक्ति मैं ही हूँ ।

पृथिवी वायुराकाश, आपो ज्योतिरहं(म्) महान् ।

विकारः(फ्) पुरुषोऽव्यक्तं(म्), रजः(स्) सत्त्वं(न्) तमः(फ्) परम् ॥ 37॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहंकार, महत्तत्त्व, पंचमहाभूत, जीव, अव्यक्त, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम और उनसे परे रहनेवाला ब्रह्म—ये सब मैं ही हूँ ।

अहमेतत्प्रसं(ङ्)ख्यानं(ञ्), ज्ञानं(न्) तत्त्वविनिश्चयः ।

मयेश्वरेण जीवेन, गुणेन गुणिना विना ।

सर्वात्मनापि सर्वेण, न भावो विद्यते क्वचित् ॥ 38॥

इन तत्त्वों की गणना, लक्षणों द्वारा उनका ज्ञान तथा तत्त्वज्ञानरूप उसका फल भी मैं ही हूँ। मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही जीव हूँ, मैं ही गुण हूँ और मैं ही गुणी हूँ। मैं ही सबका आत्मा हूँ और मैं ही सब कुछ हूँ। मेरे अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है ।

सं(ङ्)ख्यानं(म्) परमाणूनां(ङ्), कालेन क्रियते मया ।

न तथा मे विभूतीनां(म्), सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ 39॥

यदि मैं गिनने लगूँ तो किसी समय परमाणुओं की गणना तो कर सकता हूँ, परन्तु अपनी विभूतियों की गणना नहीं कर सकता। क्योंकि जब मेरे रचे हुए कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की भी गणना नहीं हो सकती, तब मेरी विभूतियों की गणना तो हो ही कैसे सकती है ।

तेजः(श्) श्रीः(ख्) कीर्तिरैश्वर्यं(म्), ह्रीस्त्यागः(स्) सौभगं(म्) भगः ।

वीर्यं(न्) तितिक्षा विज्ञानं(म्), यत्र यत्र स मेंऽ(व्)शकः ॥ 40॥

ऐसा समझो कि जिसमें भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों, वह मेरा ही अंश है ।

एतास्ते कीर्तिताः(स्) सर्वाः(स्), सं(ङ्)क्षेपेण विभूतयः ।

मनोविकारा एवैते, यथा वाचाभिधीयते ॥ 41॥

उद्धवजी! मैंने तुम्हारे प्रश्न के अनुसार संक्षेप से विभूतियों का वर्णन किया। ये सब परमार्थ-वस्तु नहीं हैं, मनोविकारमात्र हैं; क्योंकि मन से सोची और वाणी से कही हुई कोई भी वस्तु परमार्थ (वास्तविक) नहीं होती। उसकी एक कल्पना ही होती है ।

वाचं(म्) यच्छ मनो यच्छ, प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च ।

आत्मानमात्मना यच्छ, न भूयः(ख्) कल्पसेऽध्वने ॥ 42॥

इसलिये तुम वाणी को स्वच्छन्दभाषण से रोको, मन के संकल्प - विकल्प बंद करो। इसके लिये प्राणों को वश में करो और इन्द्रियों का दमन करो। सात्त्विक बुद्धि के द्वारा प्रपंचाभिमुख बुद्धि को शान्त करो। फिर तुम्हें संसार के जन्म-मृत्युरूप बीहड़ मार्ग में भटकना नहीं पड़ेगा ।

यो वै वाङ्मनसी सम्य- गसं(य्)यच्छन् धिया यतिः ।

तस्य व्रतं(न्) तपो दानं(म्),स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ 43॥

जो साधक बुद्धि के द्वारा वाणी और मन को पूर्णतया वशमें नहीं कर लेता, उसके व्रत, तप और दान उसी प्रकार क्षीण हो जाते हैं, जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल ।

तस्मान्मनोवचः(फ्)प्राणान्, नियच्छेन्मत्परायणः ।

मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या, ततः(फ्) परिसमाप्यते ॥ 44॥

इसलिये मेरे प्रेमी भक्त को चाहिये कि मेरे परायण होकर भक्तियुक्त बुद्धि से वाणी, मन और प्राणों का संयम करे। ऐसा कर लेनेपर फिर उसे कुछ करना शेष नहीं रहता। वह कृतकृत्य हो जाता है ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(व्)स्यां(म्)

सं(व्)हितायामेकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/fBdKPZqRIEA